माँ की पावन स्मृति को—

प्रथम प्रात के प्रथम रुदन में ही तो गूंज उठे थे प्राण—
तुझे बालपन में ही मुझसे छीन ले गये जब भगवान !
अबतक उसी वेदना-वन के चुन-चुन सुमन, गूंथकर हार—
माँ, सूने में करता हूं मैं तेरी स्मृति का ही शृंगार।

तेरे अलभ लोक तक जननी कैसे पहुँचे मेरे गान—
इसीलिए तेरी स्मृति को ही अर्पित है यह 'स्वर्ण-विहान'।
मैंने कौशलहीन करों से अंकित किये चित्र दो-चार !
किस दिन स्वर्ण-विहान अवनि के आँगन में होगा साकार।

'प्रेमी

दो शब्द

जब मैं केवल दो वर्ष का शिशु था तभी मेरी स्नेहमयी माँ मुझे, कवि बनने, अकेला छोड़कर, चली गई थी, तब माँ के आँचल की जगह ऊपर विराट आकाश था और गोद की जगह विस्तृत वसुंधरा। मेरा वह करुण-विहान ही इस 'स्वर्ण-विहान' का प्रेरक है। जिस मातृभूमि ने अपने प्रेम और ममता से नवजीवन-दान दिया उसे प्रेमाञ्जलि अर्पण करने ही इस नाटिका की रचना हुई है।

मैं यह तो नहीं कह सकता कि इस पुस्तक से भारत का उद्धार हो जायगा, परन्तु मुझे भी तो अपने हृदय की लघु तरंगों का चित्र खीचने का अधिकार है, चाहे वे निरर्थक और बेकार ही क्यों न हों! दुनियादार ससार कवियों की झंकार से मृत्यु के मुख से लाख बार उद्धार पाकर भी उन्हें पागल, निकम्मा और ससार का भार समझता आया है, परन्तु कवियों को इस आलोचना के प्रभाव मे अपनी मादकता, स्फूर्ति, उन्माद, और नशे की दुनिया पर पानी फेरकर दुनियादार बनने की आवश्यकता नहीं। 'स्वर्ण-विहान' राष्ट्रीयता के कुसुम खिलाने मे समर्थ है या नहीं इसके लिए मुझे जरा भी परेशानी नहीं।

मै 'कला-कला के लिए' सिद्धान्त को मानता हूँ। इस पुस्तक में मैंने एक निश्चित आदर्श रखने का प्रयत्न केवल

इसलिए किया है कि वह आदर्श 'प्रेम' है—मेरा प्राण है। राजनीति मुझे प्यारी नहीं परन्तु आँसुओं से, आहों से, दुःखों से, मानवता के अपमान से मेरे हृदय का सीधा सम्बन्ध है, इसीलिए यह तुतली-सी तान बरबस निकल पड़ी है। इस पुस्तक में केवल राष्ट्रीयता ढूंढनेवाले जगह-जगह प्रेम के उच्छृंखल गीत सुनकर बिगड़ बैठेंगे, परन्तु मैं प्रेम-हीन संसार को श्मशान से भी बुरा समझता हूं।

साहित्य के समालोचकों को इस नाटिका में कहीं भाषा की शिथिलता मिलेगी, कहीं अस्वाभाविकता भी। मैं इसे अधिक सुन्दर रूप में रख सकता था, परन्तु एक बार कलम से लिख जाने के बाद उसे संशोधित करने को समय ही नहीं मिला। मेरे मित्रों ने यद्यपि मुझे अपनी कीर्ति में बट्टा न लगने देने के लिए इसकी भूलें सुधार लेने के लिए बहुत जोर दिया था, परन्तु इस बार तो यह इसी अटपट भेष में सजी है। अगले संस्करण में देखा जायगा।

मेरी हस्त-लिपि को ठीक न पढ़ सकने के कारण अथवा दूसरे कारणों से कहीं-कहीं प्रेस की भद्दी भूलें हो गई हैं। इन त्रुटियों के लिए मुझे खेद है क्योंकि वे मेरी अनुपस्थिति के ही कारण हुई हैं। पाठक शुद्धि-पत्र से पहले ही अशुद्धियाँ सुधार लें।

'प्रेमी'

पात्र

१ रणवीर—अत्याचारी राजा

२ बलवीर—सेनापति

३ संन्यासी—देश-भक्त साधु

४ मोहन—देश-भक्त युवक

५ विजय—मोहन का मित्र

६ लालसा—राजकुमारी

७ सुवाणी—सखी

कृषक, कृषक-स्त्री, विधवा बाला, सैनिक, नागरिक आदि।

स्वर्ण-विहान

(नाटिका)

पहली झलक

[रात्रि का प्रथम पहर । कृषक-कुटी । क्षीण । दीपक ।
रुग्णा-कृषक-स्त्री । विधवा बाला]

विधवा बाला— (स्वगत)

संध्या की सुरभी किरणो मे
भरा अन्धेरा घर मे ।
एक भयानक काला परदा
उतरा है अन्तर मे ॥
जितने चमक रहे है तारे
इस अनन्त अम्बर में ।
उतने ही दुख चमक रहे है
इस जीवन-कातर मे ॥

विद्युत की जगमग होती है
तृण के स्वर्ण-महल मे।
जलती है नक्षत्र-मालिका
ऊपर गगन-विमल मे॥
स्नेह नही है, किन्तु कुटी के
लघु-दीपक निश्चल मे।
कौन उजाला कर सकता है
काले काजल-पल मे॥

रुग्णा—

स्नेह-हीन यह सूखा दीपक
कैसे करे प्रकाश।
झिल-मिल झिल-मिल दीप-शिखा पर
हँसता है आकाश॥
स्नेह-हीन होकर जगती के
शुष्क हुए है प्राण।
टिम-टिम जग-मग से तो अच्छा
हो जाना निर्वाण!

जगत-दिवाकर इन्द्र-धनुष की
रँगो की मुसकान—
फिर अन्तर पर मार रहा है
बिजली के बहु बाण ।
मधुर गान मे फँसा मृगी को
ले लेता है जान ।
अमृत दिखाकर, करा रहा है
धोखे से विष-पान ।

किसी हृदय मे मृदु ममता का
नहीं रहा है नाम ।
जाने क्यों निर्मोही बनकर
रूठे करुणाधाम ।
आह, आज दारुण-पीड़ा से—
तड़प रहे है प्राण ।
फिर भी जाने किस आशा से
अटके है नादान !

कभी न छेड़ी इस कुटिया मे
सुख ने मादक तान ।
व्यथा, कराह, अभाग्य, दुःख के
ही उठते तूफ़ान ।
हम है कृषक, जगत को करते
है जो जीवन-दान ।
आज उन्हीके बालक भूखे—
सोये है अनजान ।

अपनी रोग-ग्रस्त प्यारी का
तजकर प्राणाधार—
मज़दूरी को गये प्रात से—
रे निर्मम संसार ।
इस जीवन मे क्या रक्खा है,
जग को जिसकी चाह ।
क्यो प्राणो ने पाल रखी है
इतनी आह-कराह ?

(पीडा से कराहती है)

बाला—

किस कारण चिन्ता कर-करके

देती हो, माँ, अपने प्राण ?

इस अशान्त उत्तेजन से ; तो

बढ़ जावेगा रोग महान ।

यों ही घूमेंगे जगती में

शिशिर-वसन्त, अन्त, उत्थान ।

कहीं अन्धेरा, कहीं उजेला

दुःख, सुख और अन्त-अवसान ।

परिवर्तन की ही लहरों में

बहता है जीवन दिन-रात ।

क्यों न बदल सकते हैं जननी,

अपने आकुल पल अज्ञात ?

रुग्णा—

अखिल जगत् की आँखें मुँदकर

हो जावे अवसान—

किसी महासागर के उर में

डूबे सकल जहान !

जहाँ करोड़ो आँखो से है
बहती आँसू-धार—
ऐसा दुखिया जगत बनाकर
क्यो भूले कर्तार ?
अगर नही दे सकते सबको
अन्न-वस्त्र का दान—
तो क्यो रचते है भारी भव
वे भोले भगवान ?

बाला—

उसने तो दे रक्खा सबको
अपना दान समान ।
ये मनुष्य ही छीना-झपटी
करते है नादान ॥
वसुधा अपने उर से देती
कितना अक्षय दान !
किन्तु लूट लेते है स्वार्थी,
पाते कष्ट किसान ॥

रुग्णा—

फिर भी अबतक सुख से जीता
यह स्वार्थी समुदाय।
इससे छुटकारा पाने हम
करते क्यों न उपाय?
ये अति ऊँचे भवन मनोहर
यह वैभव-सामान!
क्यों न जला देते हैं इनको
सब मिल दुखी किसान?

(फिर वेदना से कराहने लगती है)

(मोहन और विजय का प्रवेश)

मोहन—

किस पीड़ित मानस की करुणा,
छोड़ रही है आह!
किसकी सुनता हूँ, इस घर में
पीड़ा-भरी कराह?

विजय—

क्या इस घर मे पुरुष नही है,

यह कैसा सुनसान ?

कोई क्या है नही ग्राम मे

बहना, वैद्य-सुजान ?

इस रुग्णा का नही हो सका

है क्या कुछ उपचार ।

किस करुणा का नग्न दृश्य यह

दिखा रहे कर्तार ?

रुग्णा—

हम है कृषक, कष्ट ही जिनके

जीवन का शृंगार ।

मर जाना ही होता जिनके

रोगो का उपचार !

एक दिवस भी जिन्हे न मिलता

जीवन मे विश्राम ।

हाँ, आराम तभी मिलता जब,

होता पूर्ण विराम ॥

बाला—

कहाँ वैद्य हम पा सकती है,
धन-वैभव से हीन ?
हुए भूख से तड़प-तड़प
बालक निद्रा मे लीन ॥
गये पिताजी मजदूरी को
उठकर प्रात काल ।
इधर जननि का देख रहे हो
कैसा आकुल हाल
हम है, कृषक जगत का जिनपर
रहता है आधार ।
अन्धकार-सा कंगाली ने
किया यहाँ विस्तार ॥

सोहन—

दृश्य यहाँ का देख करुणतम
भूले हम अभिमान ।
जाने क्या मानस मे बरबस
उठता है तूफान ।

कष्ट तुम्हारे हरने को हम
अर्पण करते प्राण ।
मत चिन्तित हो, बहन, सभी के
रक्षक है भगवान् ॥

(किसान का प्रवेश)

कहाँ गये थे तज रुग्णा को
ऐ किसान नादान ?
क्यों रोते-से नयन तुम्हारे
दिखते विकल महान ?

किसान—

रोना ही है हम कृषकों का
एक मात्र आधार ।
यह संसार हमे दिखता है,
अब तो कारागार ।

रुग्णा भार्या, भूखे बच्चे,
देख निकलते प्राण ।
फिर भी क्या उपचार करे अब
यह कंगाल किसान ।

सदा प्रांत मजदूरी करके—
करता कुछ उपचार ।
पर पकड़ा नृप के सैनिक ने
लेने को बेगार !

सूने हाथ गया था घर से,
आया सूने हाथ !
क्यों न प्राण दे दे दीवारों से
टकरा कर माथ !

क्यों न अन्त आता राजा का—
यह अन्याय महान ?
क्यों न किसान क्रुद्ध हो इसके
लेते प्रामुद प्राण ?

मोहन —

वृद्ध तुम्हारी दीन दशा ने,
विकल किये है प्राण !
निश्चित जानो अब होवेगा
इस नृप का अवसान ।
शत-शत कृषकों के अन्तर का
यह भीषण संताप ।
उसके अन्यायी जीवन को
देता है अभिशाप ।
होगी क्रान्ति, शीघ्र चरणों में
लोटेगा वह ताज ।
हम सब मिलकर क्या न मिटा
पावेंगे पापी राज ?
अंधकार, अंधेर, व्यथा का
होवेगा अवसान ।
प्रेम, शान्ति की उषा जगत में
छिड़केगी मुसकान ।

विजय—

इतना कष्ट सहन करके भी
रहते हो तुम शान्त ।
जिस पीड़ा की एक झलक ने,
किया हमें उद्भ्रान्त !
जलती है जो आग तुम्हारे
अन्तर में दिन-रात—
वह विद्रोह-अग्नि बनकर यदि
चमक उठे अज्ञात ।
सौ-सौ राज उलट सकते हैं—
होवे स्वर्ण-विहान ।
यदि दो साथ हमारा तो क्या—
बचें पाप के प्राण

बाल—

आदी हुए कष्ट के
सहते-सहते अत्याचार—
यह समाज बल भूले हृदय को—
हुआ विकल बेजार ।

ये न अभी कुछ कर सकते हैं,
जिन्हें प्राण से प्यार !
मैं प्रस्तुत हूँ, जग को मेरा
जीवन है बेकार !
रण-चण्डी का खेल दिखा दूँ
मैं बाला सुकुमार !
जीवन-मरण जगत-अजगत है
मुझको एकाकार !

मोहन—

बहन, शक्ति हो, तुम साहस हो,
हो तुम आशीर्वाद !
तुम आशा की अरुण किरण हो
हो उर की उन्माद !
तुम जगती की स्नेह-सुधा हो,
हो तुम जीवन-दान !
तुम पावनता की प्रतिमा हो,
हो तुम जय का गान !

बहन तुम्हारे ही तो कर मे—
है जग की पतवार ।
सदा तुम्हारे इंगित पर ही
चलता है संसार ।
तुम अपने सुकुमार करो से
पहना रण का साज ।
किसी नई लाली मे रँगने
हमे विदा दो आज !

विजय—

हाँ रण-भेरी बजने दो,
अपनी निर्बलता के नाते ।
दुखिया माता के गुण गाते,
कर मे शस्त्र पकड़ने दो ।।
हाँ रण-भेरी बजने दो !
कृषको के जर्जर कृपतन को—
औ मजदूरो के रोदन के ।
रूप भयकर सजने दो

हाँ, रण-भेरी बजने दो।
आज मनुजता के ही नाते—
गत-अत्याचारों के खाते।
एक साथ ही चुकने दो।
हाँ रण-भेरी बजने दो॥
अपनी खूनभरी झोली से,
शुभ स्वतन्त्रता की रोली से,
तिलक जननि का करने दो।
हाँ, रण-भेरी बजने दो॥

(यवनिका)

दूसरी झलक

[वन । मन्यासी, मोहन और विजय ।]

(नेपथ्य में)

माँ, तुझपर बलि होवे प्राण !

तुझे रिझाने ही तनता है
नभ में स्वर्ण-वितान ।
तुझे सजाने ही खिलती है
कुञ्जों में मुसकान ।
नीड़ों-नीड़ों के कल-रव में
है तेरा ही गान ।
कण-कण पर बरसाती है तू
अपना स्नेह महान ।
तेरी आँचल में अंकित है
युग-युग के उत्थान ।

तेरे चरणों पर लाखों के
हुए शीश बलिदान ।
हिम-गिरि-सा उन्नत हो तेरा
माँ, सात्विक अभिमान ।
तेरे आँगन मे मुसकावे
मादक स्वर्ण-विहान ।
माँ, तुझपर होवे बलिदान ।

मोहन—

है कहा आज वह स्वर्ण-काल
था हिमगिरि-सा जब भव्य भाल ।
था हरा-भरा यह अवनि थाल
जब राज्य सौख्य का था विशाल ॥

जब यहाँ न पडते थे अकाल—
जब ज्वालाओं की लपट लाल—
जब अन्यायों के कुटिल हाथ
थे नहीं बिछाते कपट-जाल ॥

भूखे-प्यासे-जर्जर किसान
सह धूप, शीत औ, दुख महान—
है पाते क्या अपमान-बाण!
है अटक रहे किस लिए प्राण ॥

जो चूस-चूसकर प्राण-रक्त
महलों में रचते स्वर्ण-साज।
गिरती है उनपर क्यों न गाज!
छिनता न नृपति का अधम ताज!

ऐ भूखे-प्यासे देश, जाग!
ऐ वैभव के अवशेष, जाग!
ऐ जीवन के कंकाल, जाग!
अब जले आग-विकराल आग!

जीवन-आहुतियाँ डाल-डाल
करदे वसुधा का थाल लाल।
आने दे फिर से स्वर्ण-काल।
हो एक जननि के सभी लाल ॥

दे जुआ आज नीचे उतार !
कर नीच गुलामी तार-तार !
इस जीवन की ममता बिसार !
सह तोप, तीर, तलवार, वार !!

बढ आगे—बढ़—ऐ शस्त्रहीन !
मत होना मन में कुछ मलीन !
तप, तेज, सत्य, दृढता अदीन
ला देंगे तुझको विजय छीन !!

विजय—

जलता है उर, है विकल प्राण !
है निकल रही अनजान जान !
निज दीन देश का देख हाल—
उस अधम नृपति का निरख जाल !

जी चाह रहा कर चूर-चूर
दूं पटक आज सौ कोस दूर—
उसका मस्तक मैं अनायास !
है जीवित अबतक व्यर्थ क्रूर !

संन्यासी—

नहीं नहीं ओ पगले यौवन,
जीत प्रेम से पापाचार !
अरे, पाप से पाप मिटाना
महा भूल है व्यर्थ विचार !

वहाँ कमी क्या है पशु-बल की,
तुम पर कहाँ तोप-तलवार ?
अ-सहयोग का महामन्त्र ही
अब कर सकता है उद्धार ॥

सारा देश एक होकर यदि
नया बना ले राज्य उदार,
दे न एक पैसा कर नृप को—
भरता जावे कारागार !

प्राण, मान, घर-द्वार तजे, पर
करे न नृप-सत्ता स्वीकार
तो कितने दिन टिक सकता है
किसी निठुर का अत्याचार ?

विजय—

यदि ग्रहण करे चुपचाप आप—
अपमानित का संताप-ताप—
दे अन्यायी को मृत्यु-दण्ड
तो उसमें है ही कौन पाप ?

जब कुचली जाती तुच्छ धूल
होती उसको भी विकल पीर।
ये निशि-दिन के अपमान-बाण—
करते रह-रह अन्तर अधीर।

यदि दुखियों के असहाय प्राण,
इन दलित जनों के करुण गान,
जो प्रतिहिंसा दें जगा आज,
तो स्वाभाविक ही है, सुजान।

यदि जाग उठे विद्रोह-आग,
यदि गूंज उठे अब 'सर्वनाश'
तो कौन रोक सकता, महान
उत्तेजित उर का अट्टहास !!

यह प्रतिहिंसा की प्रबल प्यास—
खेलेगी निश्चय रक्त-खेल ।
अब कब तक रक्खे रहे देश
पीड़ा का भारी अचल शैल ॥

जो आत्म-त्याग, जो शान्त भाव
है चाह रही निःशस्त्र राह—
वह देवों की है वस्तु, देव !
हम पा न सकेंगे उसे, आह ॥

संन्यासी—

कहाँ आग से आग बुझाना
है सम्भव, ए युवक, विचार ।
राक्षस के हित राक्षस बनना
क्या कहलाता धर्माचार ?

धर्म, सत्य जिस ओर रहेंगे,
उसी ओर होंगे कर्तार ।
एक आत्म-त्यागी भी लाखों
कर देगा बेकार कटार ॥

वत्स, नृपति के पशु-बल मे भी
अपनो की ही है भरमार।
अपने बन्धु पेट के कारण
करते पशु होना स्वीकार ।

नृप तो सुमनो की शय्या पर
करता रहता विविध विहार।
प्राण लुटाते है हम-तुम ही
युद्धो मे जाकर लाचार।

दो टुकडो पर अपना जीवन,
अपनी आत्मा, सफल विचार,
नृप के चरणो पर रख देते,
बन जाते उसके हथियार ।

हिसा का आह्वान करोगे
होगी आपस मे ही मार ।
सेना मे भी हमी कटेगे ।
दोनो ओर हमी पर वार ॥

वत्स, प्रेम के बल से बदलो
नृप के उर के कठिन विचार।
जेलें भर डालो राजा की
करो न पशु-सत्ता स्वीकार ॥

हन—

तुम्हारा नूतन स्वर्गिक गान
किसी नई पावन दुनिया में
ले जाता है प्राण।
किसी अमरता के मधुवन की
लाया सुरभि विहान !'
हटा हृदय से काला पर्दा,
यह नव-जीवन-दान।
तोपों-तलवारों से लोहा
लेंगे केवल प्राण।
प्रभो, हृदय में साहस भर दो,
दो इतना वरदान—
लाख-लाख दुःखों में भी मुख
पर खेले मुसकान।

आज नये पथ पर उडते है
जीवन के अरमान ।
माँ, तेरे बन्धन काटूँगा,
साथी है भगवान ।

सन्यासी—

प्रेम ही है भगवान उदार
प्रेम ही है अनन्त अविकार
रवि-शशि-तारो की आँखे है
तकती जिसका द्वार ।
ढक लेती काया—छाया—
माया ही उसका प्यार ।
खोज रहा है सागर तरगो
पाने जिसका पार ।
पंख माँगती तरल तरगें
करने व्योम-विहार ।
हृदय को ही भूला संसार
हृदय मे ही है प्राणाधार ।

दूसरी झलक

अपनी ही आखों का तारा
हुआ आँख की ओट
एक कदम पथ ही तो हमको
दिखता पारावार !
घर की देहली पर ही चढ़ने
खोज फिरे संसार
पल भर भी यदि आँखें मूँदें
मिलते प्राणाधार !
प्रेम ही तो है प्राणाधार !'
प्रेम ही है अनन्त अविकार !!

तीसरी झलक

[उद्यान । लालसा और सुवाणी ।]

लालसा—

सखि, है कितना अरुण विहान !
डालों-डालों में जागा है
सजल सुरीला स्वर अनजान !
क्या तू भी गावेगी गान ?

सुवाणी (गाती है)—

कसकता है यह कैसा तीर !
अलियों-कलियों का आलिंगन
देता अन्तर चीर ।
लहरें उठती हैं मानस में
नूतन नर्तन है नस-नस में
आज क्षितिज की ओर देखकर
उठती है क्यों पीर ?
कसकता है यह कैसा तीर !!

अम्बर की ऊषा—लाली में—
भरा हुआ है मद प्याली में।
आँखें झँपती हैं सपने-सी
दिखती है तसवीर ।
कसकता है यह कैसा तीर ?

लालसा—

चुरा लाई, सखि, मेरा गान !
क्या सब की वीणा में बजती
है मेरी ही तान ।
उपवन के मृदु फूलों में
हरियाली के झूलों में
मेरे मानस की भूलों में—
गूँज रहा मधु-गान।
चुरा लाई, सखि, मेरा गान !
मेरा मानस मतवाला
लेकर भावों की माला
जावे किसको पहनाने को

विकल हुआ अनजान ।
चुरा लाई सखि, मेरा गान ।
मुझको लहरों-सा उठकर
नव उमंग का सागर भर
गलबाँही में लिपटाते हैं
आकुल किसके प्राण ।
चुरा लाई, सखि, मेरा गान ।
महल, बाग गौरव, वैभव,
सूने-से लगते हैं सब
इच्छा होती है वीणा की
बन जाऊँ मैं तान ।
चुरा लाई तू मेरा गान !

सुवाणी—

सबके मानस में है, सजनी,
वही प्रेम की प्यास ।
सबको पागल करती रहती
वही प्रेम की फाँस ।

सखि, सबके उर से उड़ते है
वही प्रेम-उच्छ्वास ।
सब कलिकायें आकुल होतीं
आता जब मधुमास !

लालसा—

सजनी क्यों, आकाश-कुसुम में
अटक रही आँखे अनजान !
व्यर्थ क्षितिज के पार पहुँचने
पल-पल पागल होते प्राण !

चारु चन्द्र का चुम्बन करने
चंचल है उर के अरमान !
किस बन्धन मे बाँधें अपने
आकुल यौवन का तूफ़ान !

एक अपरिचित की वीणा का
पड़ा सुनाई मुझको गान !
तन, मन, प्राण, हृदय का सब कुछ
किया अचानक उसको दान !

क्या सखि, मैं उसकी वीणा की
बन पाऊँगी मादक तान !
उस समीर को बाँध सकेंगे
कैसे मेरे दुर्बल प्राण !

खिलने के पहले ही झुलसा
जाता है मेरा उद्यान !
कैसे बुझे अनल अन्तर का.
कैसे शीतल होवे प्राण !

क्यों न फोड़ ली मैंने आँखें
क्यों झाँका तुमको छविमान।
व्यर्थ, सुना छिप-छिप कर मैंने
एक अपरिचित का मधु-गान!

सुवाणी—
यही प्रेम का नियम चिरंतन
यही प्रेम का खेल महान।
अनचाहे, अनजान, अपरिचित
के चरणों पर चढ़ने प्राण !

जाने कब, किस ओर बैठकर
प्रेम छोड़ता अपने बाण।
जाने कब, कैसे छिद जाती
किसी अपरिचित की मुसकान।

जाने कब, किस भाँति उदय हो
कोई मादक शशि छविमान।
भोले-भाले मानस में भी
हाय, उठा देता तूफ़ान।

जाने कब किसकी वीणा का
गूँज मधुरतम मादक गान—
अन्तर के पर्दे छू-छूकर
पागल कर देता है प्राण।

पर यह बाण, सजनि, लगता है
दोनों के उर-बीच समान।
समझ न सकते हैं हम भोले
अपने ही प्राणों का गान।

स्वर्ण-विहान

सखि री, एक दिवस जीवन का
निश्चय होता स्वर्ण-विहान ।
उस दिन प्रियतम, प्रेम, प्रेमिका,
बनते घुल-मिल अनुपम तान ।

(यवनिका)

चौथी झलक

[अकेली लालसा]

(डाल पर कोयल कूकती है।)

लालसा —

कूक मत री, कोयल नादान।

मधुऋतु की मादक वेला में

तेरी पंचम तान।

मानो कोमल कुसुम-हृदय पर

तान रही है बाण।

कहती है, 'अब जाने किससे

करनी है पहचान।

अपने सोने हुए हृदय को

अरी जगा नादान।

मधुऋतु प्यारी, मधुवन प्यारा,

कितना मधुर विहान!

आज मधुरता की छाया मे
मधुर बना ले प्राण' !
पर, सखि, छिपी हुई है संध्या
ताक रहा अवसान ।
सीच अमरता रख न सकेगी
कलियो की मुसकान ।
तू भी चल देगी, सखि, जिस दिन
उजड़ेगा उद्यान ।
तो फिर टूक-टूक कर टुकडे
करती है क्यो प्राण ।

(मोहन का प्रवेश)

लालसा—(स्वगत)
अरे अपरिचित । चिर-परिचित से
पडते हो तुम जान ।
मानो कभी तुम्हे देखा था
गाते मादक गान !

चौथी झलक

जब संध्या के शून्य गगन में
तनता स्वर्ण-वितान ।

तब मानो तुम छिपकर करते
हो सुवर्ण का दान ।

जब ऊषा की कुमकुम-लाली,
फूलों की मुस्कान,
विहगों का उल्लास मनोहर
मधुपों के मधु-गान,

कहते हैं कुछ कथा कहीं की
मधुऋतु के उद्यान,
तब पड़ता है जान कहीं पर
हँसते हो छविमान ।

आज अचानक मलय पवन में
आये हो अनजान ।
तो कुछ ठहर हृदय की कलिका
पुलकित कर दो, प्राण !

मोहन—(स्वगत)

कल्पना ने ही पाये प्राण !

मृग-शावक से लोचन भोले

वाणी-सी मुसकान !

अलियों के गुञ्जन सी अलकें

उलझाती है प्राण !

चारु चन्द्रिका का पावन तन,

यौवन है उद्यान !

छुई-मुई सी सरल लजीली

मादक नयन अजान !

नव-वसन्त की मृदु लतिका-सी,

कोमलता की जान !

मानो मेरा मानस गाता

था इसका ही गान।

इस शराब-सी लाल उषा में

करके अपना दान !

देवि, तुम्हारे चरणों में क्या

पाऊँगा निर्वाण ?

लालसा—

अलियों का दल कलिकाओं को
सुना रहा मादक गुञ्जार ।
कल-कल, छल-छल, मिलन-रागिनी
गाती है सरिता की धार !
कोयल की कल 'कुहू-कुहू' से
जाग उठे अन्तर के तार ।
नव-वसन्त की नवल उषा में
चंचल है सारा संसार ।
कहीं दूर पर मानो गाते
थे तेरी वीणा के तार !
आज पास आने पर सहसा
मूक हो गये हैं क्यों तार ?
अहो शिला पर बैठ घड़ी भर
गा तो दो उन्माद, उद्गार ।
तेरी वीणा में बन्दी है
किसकी बेहोशी का प्यार !

मोहन—

मूक हुए वीणा के तार

दीपक की लौ पर पतंग-सी
अन्तर की आकुल मनुहार
उड़ उडकर अन्तर की ज्वाला
मे जल जाती है हर वार।

जिसे खोजने मेरी आँखे
तकती थी अकाश अपार
उसे न लखने तक देता है
यह निष्ठुर लज्जा का भार।

जिसकी कलित कल्पना का मै
करता था छिप-छिप शृंगार
उससे भी यह हृदय न कहता
'करता हूँ मैं तुझको प्यार।'

लालसा—

कौतूहल, विस्मय, आशा से
आये यहां, सरल, सुकुमार ।
जिसके स्नेह-स्पर्श से सहसा
हुआ समीरण मुदित अपार ।
जिसके चरणों को छूने को
झुकती कुसुमित लता सभार ।
जो मलियानल-सा आया है
छूता हुआ हृदय का द्वार ।
खोये हुए हृदय से प्यारे
ऐ अम्बर से उच्च उदार ।
जिसकी एक दृष्टि ने उर पर
किया आज अपना अधिकार ।
कैसे पूछूँ नाम तुम्हारा
कहाँ वास करते सुकुमार ।
कैसे भूल-भटके तारे-से
आचम के मेरे द्वार ?

मोहन—

मै सरिता की धार, न जिसके
जीवन मे विश्राम ।
मै मलियानिल का झोका हूँ
कही न जिसका धाम ।
मै अपने उर की पीड़ा हूँ
मै शराब का जाम ।
चाहे जो कुछ रख ले दुनिया
इस शरीर का नाम ।
मै अपने खोये वैभव को
खोज रहा अविराम ।
मै अनन्त पथ का यात्री हूँ
चलना मेरा काम ।

लालसा—

यदि वसन्त की व्याकुल घड़ियाँ
यदि मधुवन का मादक हास ।
यदि इन प्राणो की अभिलाषा
यदि अधरो की आकुल प्यास ।

अगर अछूती कुसुम-मालिका
यौवन का पागल उच्छ्वास ।
यदि आँखों की नीरव भाषा
यदि अतृप्ति का विकल विलास ।
बेड़ी बनकर पथ रोके तो
पथिक, करोगे उसे निराश ?
इनको कुचल सकोगे क्या तुम
ऐ मेरे मन के मधु-मास ?
उड़े-उड़े कैसे फिरते हो
है अनन्त ऊँचा आकाश ?
मेरे मृदु निकुञ्ज में, सुन्दर
क्यों न बना लो अपना वास ?

मोहन—

सुमुखि, सलोनी, आज क्षितिज-सी
मत रोके आँखों का द्वार ।
अपना यौवन मेरे उरका
बना न निर्मम कारागार ।

झाँक रही है कहाँ शिशिर-सी
सर्वनाश की निष्ठुर धार।
कौन कहे अलियों-कलियों का
पागलपन है पावन प्यार।

जिसे बयार झड़ा देती है
जिसे सुखाता एक तुषार।
ऐसी कलियों का गूथूँ मैं
कैसे हाय, हृदय का हार।

समझ न सकता तेरी छवि से
तेरे मानस का शृंगार।
कौन कहे उसमें भर रक्खा
सुन्दरि, तूने विष का प्यार।

मेरा प्यार बना दुखिया दिल
की पीड़ा, आँसू की धार।
मेरा हृदय बना है, बाले
दलित हृदय की करुण पुकार।

उसे न तू अपनी ही छवि का
बन्दी बना, सुमुखि, सुकुमारि ।
बन्धन बना न डाल हार-सा
मेरे उर में अपना प्यार ।

(प्रस्थान)

लालसा—

अरे मेरे दुखिया अभिमान !

यह फूलों-सी गलबाँही
ठुकरा गया दीन राही
मेरी इन शराब-सी आँखों
का इतना अपमान !

अरे मेरे दुखिया अभिमान !

मेरे प्राणों की पीड़ा
अब कर केवल तू क्रीड़ा
अब न किसी के आगे गाना
अपनी छवि का गान ।

अरे मेरे दुखिया अभिमान !

स्वर्ण-विहान

अपने यौवन की डाली
अब न झुकना मतवाली
अब न किसी से कहना, पगली
'अर्पित है ये प्राण।'
अरे मेरे दुखिया अभिमान !

(यवनिका)

पाचवीं झलक

[प्रजा की सभा]

मोहन—

हमारे दलित, दुखी, बेचैन,
देश का तुम सुन लो सम्वाद !
दीन दुखिया लोगो की कथा
हृदय मे जगा रही उन्माद।।

किसानो मजदूरो के अश्रु
सुनाते निशि-दिन अपनी पीर !
जिन्हे दुर्लभ भर-पेट अनाज
उन्ही पर ताने जाते तीर !

सैन्य के लिए हमे असहाय
लूटती रहती है सरकार।
लगाकर कर वहु भॉति अपार
नृपति करता है अत्याचार !

स्वर्ण-विहान

लाद मजदूरों पर बेगार
दिया करते हैं कष्ट हजार।
सुखी है यहाँ न कोई प्राण
चतुर्दिक फैला हाहाकार।

उमड़ उठता उर मे उन्माद
देखकर देश-जाति-अपमान!
गूंजने लगता है बस यह नाद
'करो बलिदान-करो बलिदान!'

कुटिल राजा के अत्याचार
दीन, पीड़ित, प्राणो की आह
अधम अन्यायी के अविचार
दिखाते मर मिटने की राह!

दिशाओं से होता अनजान
किसी निर्भय का भैरव-गान!
किसीका हाथ चीर आकाश—
हमारा करता है आह्वान!

उषा के पलको पर अनजान
लिखा पाते है हम 'वलिदान'।
हमे दिखलाती संध्या लाल
किसी लाली का लक्ष महान !

एक नर का जीवन-बलिदान
अखिल जगती को जीवन-दान !
विश्व के हित-चिन्तन मे प्राण
लुटा दो इसमे ही कल्याण !

शिशिर की सूनी-सूनि डाल
किसी सुरभित युग का सन्देश !
पल्लवित होगी फिर से लता
सजेगा फिर सुमनो से भेष !

शहीदो के मुख लख मुसकान
सिहर उठता है अत्याचार ।
मचल उठते वीरो के प्राण—
सहम जाता पशु-बल, संहार ।

भस्म होकर भी होता वीर
लाख लालों से भी अनमोल ।
पिला जाता है उसका खून
अमरता का रस जग को घोल ।

कसकती जब वीरों की याद
उमड़ती प्यास—भयानक प्यास ।
शहीदों का सच्चा सम्मान
कृपण—जीवन का है उपहास ।

चढ़ा जो शीश फूल-सा आज
करेगा माँ की गोद निहाल
उसी का है बस जीवन सार्थ
वही है माँ का सच्चा लाल ।

आज युग-युग का कटु अपमान
पूछता है तुम से अनजान
'भुगत सकते हो कारागार'
चढ़ा सकते हो क्या तुम प्राण ?

करो मत नृप-प्रथा स्वीकार
न दो अब पापो मे सहयोग—
न दो उसको कर कौड़ीएक
सहो पशु-बल के सकल प्रयोग !

एक किसान—

नहीं रखनी जालिम सरकार
भले ही ले वह शीश उतार।
न देगे उसको कभी लगान
भले ही जलवा दे घर-द्वार !

दूसरा—

देखना है ऐ अत्याचार
तीव्र है कितनी तेरी धार।

सन्यासी—

आत्म-बल के आगे असहाय—
मुलायम होवेगी तलवार !

सत्य, दृढ़ता अपना, विश्वास,
न खोना होकर कभी निराश।
विजय चूमेगी चरण सहास
प्रेम का होगा पुण्य प्रकाश॥

गुलामी सब पापों की खान—
उसे सिर से दो अभी उतार।
न मानो यह ज़ालिम सरकार,
चलेगा कबतक पापाचार ?

अहिंसा और प्रेम से बन्धु
मिटाना है यह अत्याचार।
कभी तलवारों की कटु धार
काटने मत लेना तलवार।

प्रेम ही है वह शक्ति अपार,
काटती जो शस्त्रों की धार।
अमर आत्मा पर किसका हाथ—
कभी कर सकता घातक वार!

सब—

अनोखा होगा, वीरो खेल !
पानी की कोमल धारा से
कठिन लड़ेगा शैल !
मुक्त पवन से युद्ध करेगी ,
भीषण ज्वाला फैल ।
एक ओर स्वच्छन्द भावना
एक ओर है जेल ।
हम स्वाधीन बनेंगे निश्चय
लाख-लाख दुख झेल ।

(यवनिका)

छठी झलक

[उद्यान । लालसा-अकेली ।]

लालसा—

लजीली आँखो की मनुहार
हुई सूनेपन मे अवसान !
वहा सूनेपन मे है दिये
नजाने कितने गीले गान !

हृदय की शान्ति, हृदय का मोद,
हृदय का वह आनन्दाभास
हृदय का सौख्य, हृदय का राग,
निगल क्यो गया शून्य आकाश ?

खोल मानस के सारे द्वार
प्रतीक्षा की कितने दिन-रात ?
सम्हाली-पाली मीठी पीर
प्रेम का यह पागल आघात !

छठी झलक

नशीली आँखों से बहुबार
निमंत्रण भेजे कितने मौन?
निगल जाता उनको अनजान
गगन में सूनेपन के कौन?

प्रेम की पीर, प्रेम के घाव,
प्रेम के गान, प्रेम-आह्वान,
प्रेम की असफल आह, पुकार
मूक है—मूक प्रेम के प्राण!

बड़े कोमल करुणा के तार
बड़ी कोमल उनकी झंकार।
गूढ़तम है पर उनका अर्थ
न समझेगा भोला संसार!

तोड़ डाले करुणा के तार
बजाकर मैंने कितनी बार
हुई सूनेपन में है लीन
हृदय की तन्त्री की झंकार।

हठीली आह छोड़ घर-बार
पकड़ लेती है सूनी राह।
सुधा-सिञ्चित यह सुरभित साँस
रूठ उड़ जाती नभ मे, आह!

कामना, आशा का आधार—
पकड़, उठती है कितनी बार?
किन्तु, पकड़ा देता है कौन
उसे सूनी शैय्या हर बार!

गर्म होता है कितनी बार
बावली आशा का बाजार!
मचल पड़ता है जब उन्माद
मचाता कितना हाहाकार?

किन्तु, सब सूनेपन मे लीन
रहा अब सूनापन ही शेष!
रसीली आँखो की रस धार
सींचती सूनेपन का देश!

हृदय की मिल कर सारी शक्ति
पूजती सूनेपन का देश।
लुटाया सोने का संसार
गले मिल सूनापन अतएव !

(मोहन का प्रवेश। लालसा छिप जाती है।)

मोहन—

आह, मेरे अन्तर के प्यार !
कसक उठते हो बारम्बार !
सरल सुमनो की ओर निहार
हृदय कर उठता हाहाकार।

कठिन कर्तव्यो मे ये प्राण
भुला दे कैसे करुणा-गान ?
कसक ही उठता है अनजान
किसी के नयनो का छवि-बाण !

उधर कर्तव्य, इधर है प्यार,
उधर तलवार, इधर मनुहार,
देश की है उस ओर पुकार,
इधर यौवन-तूफान, दुलार।

हाय, किससे ढक लूँ अनुराग?
बुझेगी कैसे उर की आग?
अरे जीवन का करुण-विहाग।
अरी यौवन की पहली फाग।

लालसे। ऐ प्राणों की पीर।
लालसे। ए अन्तर का तीर।
कसकती किस पहलू मे, हाय,
कहाँ देखूँ अन्तस्तल चीर।

लालसा— (लालसा बाहर निकलती है)

प्रभो, मेरे पहले उन्माद।
विकल यौवन के प्रथम विहान।
व्यथित वंशी की पहली तान।
इष्ट, हे मेरे जीवन-प्राण।

व्यथा-सी, पीड़ा-सी अनजान
साँस-सी, छाया-सी सुनसान !
तुम्हारे चरणो मे दिन-रात
पडी रहती हूँ मै अज्ञात !

मोहन—

विभव के उपवन की मृदु कली !
मुझे करती हो क्या तुम प्यार ?

लालसा—

तुम्हारा है यह कैसा प्रश्न !
'मुझे करती हो क्या तुम प्यार ?'
तुम्हे किस दर्पण मे, सुकुमार,
दिखाऊँ अपने उर का प्यार ?

विरह मे जिसके मै दिन-रात,
बहाती हूँ आँसू अविराम।
प्रेम मे हो जिसके लवलीन,
छोड़ बैठी हूँ सारे काम।

वही पूछे यदि मुझसे प्रश्न,
'मुझे करती हो क्या तुम प्यार?'
हाय, उसकी यह मीठी बात
छुरी-सी छिदती उर के पार।

तुम्हारे सम्मुख देगा, हाय,
हृदय की आज गवाही कौन?
देखिए, इन नयनों की ओर!
समझिए इनकी भाषा मौन।

भ्रमर कलियों से करता प्रश्न,
'मुझे करती हो क्या तुम प्यार?'
और क्या उत्तर दे वह मूक—
लुटा देती सब सौरभ-सार॥

पूछती यही मृगी से प्रश्न
मधुर वीणा की मादक तान।
भला क्या उत्तर दे वह दीन—
लुटा देती है अपने प्राण!

तुम्हारे चरणो की है भेट
प्रेम का मेरा कोमल फूल!
बनाओ इसे हृदय का हार
या कि अपने चरणो की धूल!

मोहन—

देवि, कर्तव्य-कठिन कर्तव्य
बुलाता है मुझको उस ओर
तनी है मेरे सिर पर सदा
तुम्हारे नृप की फाँसी-डोर।

तुम्हारे अञ्चल मे मै बैठ—
सकूँ, इतना है कब अवकाश?
बुलाते दुखियो के उच्छ्वास
बुलाता है ऊपर आकाश॥

वेदने, ऐ प्राणो की प्यास
करूँगा तुझको आज निराश।
अरी स्मृति, यदि आवेगी पास
कुचल डालूँगा तेरा त्रास!

(प्रस्थान)

लालसा—

मुझे ठुकराओ ही हर बार
चाहती हूँ न तुम्हारा प्यार।
हृदय मे है जो प्रेमल मूर्ति
बहुत है मुझे वही आधार।

चढ़ाती हूँ मै जीवन-फूल
तुम्हारे चरणो पर सुकुमार!
बनाना इसे चरण की धूल
और ठुकराना बारम्बार।

प्राण, ठुकराया मेरा प्यार—
नहीं है अब इसका कुछ खेद!
शीश पर या चरणो के तले
बास करने मे है क्या भेद?

माँग कर तुमसे करुणा-दान
सहा ही क्यो मैने अपमान?
हुई शीतल अब पागल चाह!
भिखारिन का यह कैसा मान?

न कहना अपने उर की पीर।
न दिखलाना नयनों का नीर।
शून्य में ही भरना उच्छ्‌वास।
बढ़ो-हाँ, बढ़ो, व्यथा गंभीर।

हृदय के भीतर बारम्बार—
रहे उठता तूफ़ान अपार।
व्यथा का यह पहाड़-सा भार
उठाये रहो हृदय सुकुमार।

ठोकरें ही खाना दिन-रात
शान्ति-सुख का करना अवसान।
किसी निष्ठुर पर देना जान
यही इस जीवन का अरमान!

(यवनिका)

सातवीं झलक

[मोहन हाथ में झण्डा लिये हुए। विजय। कुछ नागरिक।]

सब—

लड़ेगा तोपो से बलिदान—
वहाँ तीर-तलवारे होगी
और यहाँ पर प्राण।
लाल-लाल आकाश सिखाता
सरल शहीदी शान।
पशुबल, अत्याचार, कपट ने
ताने तीर—कमान।
बढ़ो-बढ़ो, आगे सीना कर,
सिहो की सन्तान।
'सर्वनाश' गाता है—गावे
अपनी पागल तान।
मर-मिटने मे ही मिलता है
मृदु अमरत्व महान।

युग-युग का अन्याय हृदय में
उठा रहा तूफ़ान ।
रंगभूमि सौ-सौ हाथों से
करती है आह्वान ॥

(बलवीर का सैनिकों-सहित प्रवेश)

बलवीर—

ऐ युवकों के पागल नायक,
मूर्तिमान विद्रोह ।
तेरे मस्तक का महीप के
मानस को है मोह !

तुझे बाँधने को बन्धन में
बाध्य हुई जंजीर
राजा की आज्ञा से तुमको
बन्दी करता वीर ।

(हथकड़ी पहनाता है)

विजय—

किसका साहस है जबतक
जीवित है प्राण हमारे
हथकड़ी आज पहनाकर
ले जावे तुमको, प्यारे !

एक नागरिक—

सेनापति, बन्धन खोलो,
मत करो हमें हत्यारे ।
मरघट-सा देश बनेगा
कर देंगे विप्लव सारे।

मोहन—

मत भूलो अपनी आन, वीर !
मत बनो अभी से तुम अधीर ।
यह रक्त-धार, तलवार-वार
दुखियों की देगी बढ़ा पीर ॥

शुभ सहन-शक्ति औ' आत्म-त्याग
लावेगा तुमको प्रेम-राज ।
बन्धन का निष्ठुर कपट-जाल
काटेगा केवल प्रेम आज ॥

बनते हो क्यो शैतान, व्यर्थ
खोओ मत अपनी शक्ति, तात।
तुम अगर करोगे रक्त-पात
तो कर लूॅगा मै आत्म-घात

यह तोप, तीर, पैनी कटार ,
कर सकते आत्मा पर न वार।
मै कहीं रहूॅ, पर यह प्रवाह—
यह वेग, बहेगा अब अपार ॥

(नेपथ्य मे)

प्रेम पर रखो सदा विश्वास ।
न न समझो यह अपने मन मे
काला है आकाश ।

अस्थिर बादल है, पगलो,
यह अँधियारा है ह्रास ।
मिट जावेगा एक घड़ी मे
होगा पुन प्रकाश ।
चलने दो इस अंधकार मे
तरणी को सोल्लास ।
अटल प्रेम ही पहुँचा सकता
तुमको तट के पास ।

(संन्यासी का प्रवेश)

एक नागरिक—

पूज्य, बुढ़ापे मे यौवन की
भर कर उर मे आग—
क्या तुम ही गाते थे छिपकर
आशा का मृदु राग ?

अरे, तपस्या की मृदु प्रतिमा,
ऐ साक्षात विराग ।
सब के प्राण डसे लेता है
यह हिंसा का नाग ।

संन्यासी—

व्यर्थ है हिंसा का अभिमान ।

अपनी कम्पित स्वर-लहरी में
भरो प्यार का ही तूफान ।
यह शैतान हृदय में विष की
प्याली भरता है अनजान ।

भूलो तलवारों की बिजली
भूलो पशुबल का अभिमान !
भरो हृदय के भीतर केवल
स्वाभिमान, जीवन-बलिदान ।

रोते है वन्धन मे पड़कर
जननी के अपमानित प्राण ।
छोड़ो सुख-शय्या, अव भैया,
करो कण्टको पर प्रस्थान ।

कोटि-कोटि कण्ठो मे गूँजे
यही गीत, केवल यह तान—
'या स्वतन्त्र जन ही वन लेगे
अथवा हम देवेगे प्राण !'

सव—

वल देवे हमको भगवान !
जिससे चढ़ा सके हम माँ के
चरणो पर ये प्राण ।
नई मधुरिमा से भर जावे
मादक स्वर्ण-विहान ।

सातवीं झलक

गूँजे अन्तर के तारों में,
अब जीवन-बलिदान ।
देखें कितने प्यासे होंगे
नृप के तीर-कमान ।

(यवनिका)

आठवीं झलक

[उद्यान । लालसा अकेली ।]

लालसा—

कहेंगे, समझेंगे क्या लोग—
इसी का आता पीछे ध्यान ।
सभी के ही सम्मुख 'हा नाथ!'
निकल पड़ता मुख से अनजान ।

कौन बैठे है मेरे पास ।
नहीं रहता है इतना ज्ञान ।
न-जाने कैसे-कैसे, हाय!
प्रेम के गाने लगती गान ।

कभी बैठी भरती हूँ आह ।
हृदय को लेती कर से थाम ।
सभीके सम्मुख अपने आप
अश्रु बहने लगते अविराम ।

कभी लेती हूँ मैं कर जोड़,
बैठ जाती हूँ घुटने टेक ।
समझकर सुनते होंगे नाथ,
विनय करती हूँ भाँति अनेक ।

बैठ जाती हूँ आँखें मूँद
दीखते मेरे प्राणाधार—
सृष्टि के सकल सुखों के सार
बीतते पहरों इसी प्रकार ।

जागती हूँ, अथवा हूँ सुप्त
नहीं इतना भी मुझको ज्ञान ।
वही हूँ या मैं हूँ कुछ और
नहीं इतना तक मुझको ध्यान ।

प्रेम ने फूँका कैसा मंत्र
बदल-सा गया सकल संसार ।
किया कैसा उनने व्यवहार
शत्रुता थी या यह था प्यार ।

पवन से, पुष्पो से, बहुबार
प्रकृति से करती हूँ मै बात।
फूल मे पाकर उनका रूप
चूम लेती हूँ कोमल गात।

बनाती और तोड़ती नित्य
सरस सुमनो का सुन्दर हार।
फूल-सी खिल मुरझाती, हाय,
हृदय की आशा बारम्बार।

नहीं छोड़ेगी पीछा, हाय,
घड़ी भर को भी उनकी याद।
यही कहता होगा संसार
इसी को कहते है उन्माद।

(राजा और सेनापति का प्रवेश)

रणवीर—

पगली ऐसे विकल पलों मे
यह स्वच्छन्द विहार ।
उधर प्रजा उत्तेजित होकर
घूम रही बेजार ।
जाओ, तुम महलों में जाओ
फिरो नहीं बेकार ।
जाने क्या अनर्थ परदे मे
करता है शृंगार ।
गाव जला डाले विद्रोही,
वही रक्त की धार ।
पर न आज तक बस मे आये
डाकू, चोर, लबार ।
कितना है अन्याय बनाते
अपनी ही सरकार ।
देते नहीं टैक्स, भर डाले
सारे कारागार ।

मै स्वामी हूँ, वे सेवक है
कहता है संसार ।
शास्त्र बताते हैं राजा ही
जनता का कर्तार ।

लालसा—
नहीं, पिताजी तुम्हे नहीं है
शासन का अधिकार ।
चूस-चूसकर रक्त प्रजा का
भरते हो भंडार ।

जनता का धन हरने वाले
डाकू, चोर, लबार ।
किस मुँह से कहते अपने को
जनता का कर्तार ।

रणवीर—
यह तलवार कहाँ रुकती है
'हे जग के कर्तार' ।
कबतक चल सकता है देखूँ
यह विद्रोह-विकार ।

पापी मोहन पड़ा जेल मे
जनता का आधार ।
देखे और कौन बनता है
विद्रोही-सरदार ?
अब स्मशान सब गाँव बनेगे
बनी रहे तलवार ।
'सर्वनाश,' हाँ, सर्वनाश का
अब होगा व्यापार ॥

(रणवीर और बलवीर का प्रस्थान)

लालसा—

इसीका है हमको अभिमान ।
ये सोने की जग-मग ईंटे
यह वैभव-सामान ।
इनके नीचे दबे हुए है
कितने कोमल प्राण ।

यह रेशम की उज्ज्वल साड़ी
यह मणि-मुक्ता-हार ।
जाने कैसी करुण-रागनी
गाते है अनजान ॥
वह मेरी सुमनो की शय्या
यह मेरा उद्यान ।
दीन जनो का पेट काटकर
करते है अभिमान ॥
यह मोटर, यह बग्घी, हाथी,
यह शोभा यह शान ।
कितनी करुणामय आँखो का
करते है अपमान ॥

(बलवीर का पुन. प्रवेश)

बलवीर—
अरे, ओ, उर के पश्चात्ताप
दूर कर तू ही मेरा पाप ॥
रक्त से रँगे आज ये हाथ
मुझे ही देते है अभिशाप ॥

सैकड़ो गांवो को कर राख
हँसा है मेरा पापाचार ।
छीन अबलाओं का शृंगार
किया सूना उनका संसार ।

चलाता हूँ मै जब तलवार
निकलने से लगते है प्राण ।
लूटता माताओं के लाल
हाय, मै पापी क्रूर महान !

नृपति तेरी जय का आधार—
हमारी ही तो है तलवार !
एक तेरा पापी संकेत
कराता है अबलो पर वार ।

लालसा—

वीर धो डालो अपना पाप
न दो अन्यायी नृप का साथ !
पापियों की आज्ञा है त्याज्य
भले हो बन्धु बाल या नाथ !

आज अपने हाथों से, वीर,
खोल दो सारे कारागार।
बसा दो फिर से सूने धाम,
फेक दो यह निष्ठुर तलवार।

बसाओ एक नया ही राज्य,
जहाँ पर भूप, प्रजा या सैन्य।
आदि का हो न दुखित अस्तित्व।
दूर हो विपदायें—दुख-दैन्य।

प्रेम ही हो अब सबका भूप
प्रेम ही हो अब सबका राज-
प्रेम ही हो सब का अधिकार,
प्रेम ही हो अब सब का ताज।

चलवीर— (तलवार फेककर)

फेक आज निष्ठुर तलवार
विद्रोही होंगे ये प्राण!
मेरे जीवन का अनजान
हुआ आज है स्वर्ण-विहान।

जाने किस-किस का संताप
देता है नृप तुझको श्राप।
सकल सैन्य है मेरे साथ
रुके आज ही सारे पाप!

दूँगा खोल जेल के द्वार
विहगों ने सब सहितोल्लास।
करें गगन में मुक्त विहार।
खुलकर खेलें जग में हास।

(संन्यासी का प्रवेश)

संन्यासी—

जगती अपनी आँखें खोल।
घृणा, स्वार्थ, अज्ञान आदि ने
दिया हलाहल घोल—
करो प्रेम-आँगण में, प्यारो,
शिशुओं से किल्लोल।

प्रेम और वैभव दोनो को
देखो उर मे तोल ।
किसकी चमक अधिक प्यारी है,
किसका ज्यादा मोल ?

(बलवीर और सन्यासी का प्रस्थान)

लालसा।—

हुआ जीवन का स्वर्ण-विहान
ऐ मेरे मानस की पीड़ा
छोड़ो अब तुम अपनी क्रीड़ा,
मै यौवन की बेहोशी मे
भूल गई थी लक्ष महान ।
हुआ जीवन का स्वर्ण विहान ।
ऐ प्राणो की विकल-पिपासा
यौवन की चंचल अभिलाषा—
नई मधुर मादक प्रतिमा पर
कर दूँगी तुमको बलिदान ।
हुआ जीवन का स्वर्ण-विहान ।
यह मादक आँखो की लाली—

आठवीं झलक

यह चंचल चितवन मतवाली—
आज नई प्याली में घुलकर
होगी शीतल सुखद महान।
हुआ जीवन का स्वर्ण-विहान।

(यवनिका)

नवी झलक

[विजय अकेला ।]

विजय—

एक कुञ्ज के कुसुम एक ही
साथ खिले—मुसकाये थे !
एक मालिका मे ही अपने-
जीवन गूंथ मिलाये थे ।
वह मेरे उर की माला—
मै उसके उर की माला !
वह तो था मेरा मतवाला-
मै था उसका मतवाला !
अरे देश, ऐ सेवा के व्रत,
अलग किया दोनों को, आह !
ऐ स्वतंत्रता, कितनी टेढ़ी,
और कटीली तेरी राह !

अरे देश, तेरी गोदी में—
कितने प्राणों की प्याली—
छलक-छलककर टूट-फूटकर
भरती रहती है लाली ।
ए मोहन, जाने किस युग में—
मुझे मिलोगे, अय प्यारे !
ए अन्तर के प्यार, हृदय के—
सार, आंख के प्रिय तारे !

(लालसा का प्रवेश)

लालसा—

विकल विजय, किस लिए अकेले—
बैठ यहाँ सुनसान—
किसकी पीड़ा की प्याली में
घोल रहे हो प्राण ?

विजय—

जिसके लिए तुम्हारे उर की-
पीड़ा गाती गान ।
जिसके लिए भिखारिन बनकर
घूम रही छविमान ।
बाला, दो दिन से जो तेरे
उर का है तूफ़ान ।
वह मेरी वर्षा की लहरे,
युग-युग का मृदु गान ।
जो मोहन तेरी वीणा की
बना हुआ है तान ।
विजय न-जाने कबसे उस पर
चढ़ा चुका है प्राण ।

लालसा—

तो क्यों नहीं बंधु, हम-तुम दोनों मिल
उसे खोज ले आवे ?
आओ आज तोड़कर कारागृह
उसको हम गले लगावे ॥

छोड विभव की ममता-माया,
छोड पिता का प्यार।
आई समता की सुरसरि की
विमल बहाने धार।
आओ आज खोलकर अपने
कर से कारागार।
हार तुम्हारे उर का दूँगी
मैं तुमको उपहार।

विजय—

बनो न तुम मदिरा की प्याली,
बनो न यदि बेहोशी।
बनो न तुम बन्धन की कड़ियाँ,
बनो न यदि खामोशी।
बनो न उर की हिचक, कसक, या
शंका, विस्मय, या सन्देह।
कहाँ शक्ति का स्रोत बने,
हे देवि! तुम्हारे उर का स्नेह।

तो हम लाख-लाख विपदायें
झेलें सुख के साथ—
देते हो संकेत दूर से
ही यदि, बहन, तुम्हारे हाथ !

(यवनिका)

दसवीं झलक

[कारागार। अकेला मोहन।]

मोहन—

हँसो, ऐ, काले कारागार!
हँसो, ऐ, अन्धकार-साकार!
हँसो पापी के पापाचार!
हँसो।दो-दिन ए अत्याचार!

हँसो, ए सूनेपन-एकान्त!
हँसो, निष्ठुर पीड़ा उद्भ्रान्त!
हँसो, काली-काली दीवार!
हँसो, मानस की व्यथा अशान्त!

प्रेम ही खोलेगा यह द्वार!
कभी आकर किरणों का प्यार—
सुनहला रच देगा संसार!
हँसो, ऐ अंधकार दिन-चार!

हँसो, ए काले कारागार!
तुम्हीं मे हुआ कृष्ण-अवतार।
हँसो, ए पापी-राजा कंस!
चला लो दो दिन को तलवार।

विकल मत होना मेरे प्राण!
विकल मत होना उर-अरमान!
विकल मत होना ऐ अभिमान!
साधना ही है विजय महान।

मुक्त है हृदय, मुक्त हैं प्राण!
अरी ओ, भूतों-सी दीवार!
बन्द कर सकती है क्या कभी
किसी मानस के मुक्त विचार?

(लालसा का प्रवेश)

मोहन—

कहाँ यह शशि का मादक हास
कहाँ यह काला कारागार!
तमिस्रा के उर पर तुम आज
चलाने आई हो तलवार!

मुझे, निर्मम ! तुम देख निरीह,
यहाँ करने आई उपहास !
कहो तो देवि, कहाँ का प्यार,
पिलाने आई है यह प्यास ?

लालसा—

उठो, ऐ, मूर्तिमान बलिदान !
उठो, ए, दुखियो के आधार !
खोल दूँ अपने कर से देव,
बेड़ियाँ-बन्धन-कारागार !

मोहन—

नहीं-नहीं, बाले, बन्धन का
कर न सकोगी तुम उपचार ।
जिसने बन्दी बना रखा है
वही खोल सकता है द्वार !
तभी मुझे बाहर जाने का
हो सकता, सरले, अधिकार ।
जिस दिन मिट जावेगा भू से
निठुर नृपति का पापाचार ।

लालसा—

वही होगा, हे जीवन-नाथ ।
झुकावेंगे नृप तुमको माथ—
तुम्हारे बन्धन की जंजीर ।
खोल देंगे उनके ही हाथ ।

(लालसा का प्रस्थान)

मोहन—

हृदय, वेदना में ही भूल ।
कुचला है कठोर चरणों से
तूने कोमल फूल ।
कसक रहा है वही हृदय में
बनकर पीड़ाशूल ।
जाने क्या उर में चुभता ही
रहता सदा त्रिशूल ।
बढ़ा-बढ़ी अन्तर की ज्वाला
बढ़ री व्यथा अकूल ।

(सेनापति और लालसा का प्रवेश)

सेनापति—

बेड़ियाँ पहनाई थीं तुम्हे,
इन्हीं हाथों से मैंने, हाय !
खोलकर इनको आज समोद
पाप धोने का करूँ उपाय !

नृपति का छोड़ा सबने साथ
सैन्य ने भी फेंकी तलवार ।
आज पशु-बल से जीता, देव,
तुम्हारा सत्य, तुम्हारा प्यार !

मोहन—

यदि बदल जायँ राजा के
वे पापी, क्रूर, विचार—
मै तभी समझ सकता हूँ
जीता है मेरा प्यार ।

यदि मुक्त करे बन्धन से
बढ़ कर नृप के ही हाथ।'
मैं तभी छोड़ सकता हूँ
यह प्यारा कारागार ।'

(सेनापति का प्रस्थान, लालसा हार निकालकर मोहन को पहनाती है)

मोहन—

सींच सींच नित आँखों से जल
हरा किया अन्तर का घाव।
सब-कुछ खोकर, सब कुछ देकर,
पाया मैंने यही गुलाब ।

सौ-सौ शूलों को सह-सहकर
पाला है यह कोमल फूल ।
इसकी मादक मधुर सुरभि के
आगे सुख-वैभव है धूल ।

पीड़ा का प्याला भर-भरकर
करता जब यह मुझे प्रदान ।
एक नशा-सा दिखता है तब
यह जग, और शून्य यह प्राण ।

कठिन तपस्या से पाया है
मैंने यह पावन उपहार ।
मत तोड़ो, मत तोड़ो, इसके
बिना शून्य मेरा संसार ।

लालसा—

करो आज तो, प्रभु, स्वीकार—

मेरी चिर-संचित अभिलाषा,
ये आँसू के तार ।
यह सुमनों की कोमल माला
मानस का उपहार ।

स्वर्ग बना है चरण तुम्हारे
छूकर कारागार ।
अपने पावन पद छूने दो
झुकता मेरा प्यार ।

(रणधीर, संन्यासी, और विजय का प्रवेश)

रणधीर—

ऐ कोटि-कोटि मानस के
राजा—आँखों के तारे !
बन्दी रख सकते कबतक
लघु बन्धन-जाल हमारे ?

(बन्धन खोलता है)

कबतक श्मशान के ऊपर
रक्खूँ सिंहासन मेरा ?
कैसे लहरों-लपटों पर
चल सकता शासन मेरा ?

मेरे अपने स्वजनों को
भी तो है तूने छीना ।
सबको बस में कर लेती
यह मधुर प्रेम की वीणा ।

पापों का मस्तक झुकता
है आज सत्य के आगे ।
तलवारों से तीखे हैं
ये प्रेम-स्नेह के धागे ।

करता हूँ तुझे समर्पित
मैं आज लालसा मेरी ।
मेरी निर्दयता छूटी
ऐ मोहन, करुणा तेरी ।

केवल मनुष्य ही बनकर
मैं सीखूँ जग में रहना ।
यह राज-पाट-वैभव तज
हो प्रेम-धार में बहना ।

हों स्वर्ण-विहान मनोहर
ये भेद-भाव सब भागे।
अब नये प्रेम के जग मे
ये अलसित पलके जागे।

हो जहाँ हृदय ही राजा,
हो जहाँ प्रेम ही शासन।
सबकी ममता मे होवे
समता का पावन आसन।

विजय— (लालसा से)

बहन, तुम्हारा भिक्षुक भाई,
लखकर अपनी कंगाली।
लज्जित है उपहार कौन-सा दे
है उसका घर ख़ाली।

जिसके अधरों पर बरसों से
खेली भी न कभी मुसकान—
उसका हृदय आज के सुख से
छेड़ रहा है सुख की तान।
तुम अपनी इस प्रेम-भरी मृदु
दुनिया में सुख से रहना।
प्रेम ओढ़ना, प्रेम बिछाना,
प्रेम-सिन्धु में ही बहना।
मेरा हृदय तुम्हारी पावन
दुनिया को अन्तरतम से।
देता आज बधाई, 'सुख से
गले मिलो तुम प्रियतम से।'

संन्यासी—

स्वस्ति, यह नूतन स्वर्ण-विहान।
विस्तृत अम्बर की छाया में
गावे मंगल-गान।
हरी-भरी हों ललित लतायें
मुसकावें उद्यान।

दान मधुरिमा का जग को दे
कलियों की मुसकान।
'प्रेम-प्रेम' सबकी वीणा मे
गूँज उठे अनजान।
कुचले नहीं किसी का मानस
स्वार्थों का अभिमान।
सब समान है, सब समान है—
राजा और किसान।
पशु-पक्षी तक स्वजन हमारे
दुखे न कोई प्राण।
सब के मानस में भगवन् है
सब-सब के भगवान '

(यवनिका)

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	२	क्षीण । दीपक	क्षीण-दीपक
३	४	अन्धेरा	अँधेरा
४	२	तृण	नृप
५	१	जगत-दिवाकर	जगत दिवाकर
६	१	को	के
७	७	अन्धेरा	अँधेरा
७	८	दु ख	दुख
१९	१४	अख्यान	आख्यान
१९	१२	तेरी	तेरे
२४	१	आप	चाप
२६	१०	सफल	सकल
३८	९	टूक-टूक	कूक-कूक
३९	५	कुमकुम	कुंकुम
४३	७	मलियानल	मलियानिल
४८	२	झुकना	झुकाना
५०	७	है वस यह	है यह
५१	९	सूनी-सूनि	सूनी-सूनी
५४	१	दृढता अपना,	दृढ़ता, अपना
५९	२	देश	देव
७८	१२	कहाँ स्कती	कहा सकती
८६	५	माला	माला था
८८	८	वर्षा	वर्षो